प्रकाशक
विश्वविद्यालय प्रकाशन
गोरखपुर

प्रथम संस्करण
१९५५

ढाई रुपये

मुद्रक
राम आसरे कक्कड़
हिन्दी साहित्य प्रेस
प्रयाग

पूज्य 'दादा'—
पंडित माखनलाल चतुर्वेदी
के चरणों में
श्रद्धा सहित

यह संग्रह

कवि का अपनी कविताओं के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहना पाठकों या श्रोताओं के प्रति एक प्रकार से अविश्वास प्रकट करना है; ऐसा न भी हो तो भी वह कविताओं के आस्वादन में साधक कम, बाधक अधिक होता है। इधर तो इसकी परिपाटी ही चल पड़ी है। मैं ऐसा नहीं करूँगा।

इस संग्रह के सम्बन्ध में अवश्य दो एक बातें कहनी हैं —

संग्रह दो खंडों में विभाजित किया गया है 'नाव के पाँव' और 'टूटती लहरें' प्रथम खंड में मेरी सन् १९५१ के बाद की प्रायः सभी कविताएँ संग्रहीत है और द्वितीय खंड में इसके पूर्व की कुछ कविताएँ। नयी और पुरानी रचनाओं को एक साथ मिलाकर रखना मुझे उचित नहीं लगा और पिछली कृतियाँ मैं सर्वथा छोड़ भी नहीं सका। कुछ पूर्वाभास देने की दृष्टि से और कुछ शायद मोह के के कारण।

मन जितना अधिक शब्द और अर्थ में रमता है उससे अधिक उसे रूप आकार भाते हैं। कम से कम मेरे लिए तो यही सत्य रहा है। नाव के पाँवों की कल्पना भी इसी रूपाकार प्रियता का ही एक परिणाम है। कविताएँ लिखने से अधिक चित्र बनाना रुचता है। इसी स्वभाव ने मुझे इस संग्रह की हर कविता को रूपाकारों में अलंकृत करने के लिए प्रेरित किया। अलंकरण में अर्थ और आकारों की पारस्परिक संगति रखने का यथासम्भव प्रयास किया गया है।

इस संग्रह को इस रूप में प्रस्तुत करने में मुझे अपने निकट के अनेक मित्रों रघुवंश जी, भारती, लक्ष्मीकान्त वर्मा, सर्वेश्वर, रामस्वरूप चतुर्वेदी और सब से अधिक साही से सहयोग मिला है जिसके लिए मैं उन सब का हृदय से आभारी हूँ।

वैशाखी पूर्णिमा
सं० २०१२
मोतीमहल
दारागंज,
प्रयाग

[signature]

अनुक्रम

नाव के पाँव

टूटती लहरें

गाँव के पाँव

आस्था

जो कुछ प्राणों में है,
प्यार नहीं,
पीर नहीं,
प्यास नहीं —
जो कुछ आँखों में है,
स्वप्न नहीं,
अश्रु नहीं,
हास नहीं —
जो कुछ अंगों में है,
रूप नहीं,
रक्त नहीं,
माँस नहीं —
जो कुछ शब्दों में है,
अर्थ नहीं,
नाद नहीं,
श्वास नहीं —
उस पर आस्था मेरी।
उस पर श्रद्धा मेरी।
उस पर पूजा मेरी।

अव्यक्त चुम्बन

एक चुम्बन वह
कि जिसमें शीत होठों तक ढुलक आये असीम विषाद ;
अधर-मधु के साथ मिश्रित आँसुओं का स्वाद ।

एक चुम्बन वह
कि जिसमें उष्ण श्वासों की उमस नस नस कसे उन्माद,
अधर-मधु के साथ मिश्रित दंशनों का स्वाद ।

किन्तु इनसे भिन्न—बिल्कुल भिन्न—चुम्बन एक
तन में निहित, मन में निहित,
आँसू में, नयन में निहित,
सब आकर्षणों का मूल,
पीड़ा से न जो विगलित,
न जो उन्माद से आरक्त,
चिर अव्यक्त,
जो पहुँचा नहीं सुकुमार रागारुण अधरदल तक,
भोर के नीहार-सपने सा
उलझ कर रह गया अध-मुक्त पलकों बीच ।

उस जैसा नहीं कुछ और—
जो दे झुलसता अस्तित्व भीगे स्पंदनों से सींच ।

तुम्हारा आगमन

यह—तुम नहीं आये
लगा जैसे सुरभि ने
स्निग्ध प्राणों पर
जुही के, इन्द्रवेला के, कमल के,
ओस भीगे, पारिजाती फूल बरसाये।

पकी झुकती वालियों वाले
गीत गाते लहलहाते खेत की—
सुनसान ऊँची मेड़ पर
श्वेत स्लेटी सारसों के एक जोड़े ने
गेरुई दो गरदनें नीचे झुकायीं—पंख फैलाये।

झुटपुटे में साँझ के चूनर पहन
किसी नत शिर नव वधू ने
अरुण मेंहदी रचे हाथों से जला—
नील यमुना की लहरियों पर
पात में रख—मौन, घी के दीप तैराये।

हृदय को, मन को, नयन को
इस तरह भाये।
सच,
बहुत दिन बाद तुम आये।
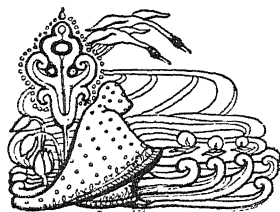
अट्टहास

पागल हो जाऊँगा,
हँसो नहीं,
अपनों पर क्या कोई ऐसे भी हँसता है।
मेरे मन को रह रह कर संशय डसता है।
बंद करो अट्टहास
अट्टहास बन्द करो
इसमें छटपटा रहीं आँसू की धारें हैं,
इसमें आत्मा की हत्या की चीत्कारें हैं।

बंद करो
इस सूने रव की भैरवता को मंद करो

माना हमने अपनी आत्मा को बेच दिया,
अपने विश्वासों का वध अपने आप किया,
श्वासों की पूजा प्रतिमाओं को तोड़ दिया।
जीवन को पापों से, शापों से बाँध लिया।
फिर भी तुम हँसो नहीं
मेरे अंतर के सब बाँध टूट जायेंगे।
परिचय के क्षितिज और दूर छूट जायेंगे।

रुको रुको !
पंजों में कोई यों प्राणों को कसता है।
मेरे मन को रह रह कर संशय डसता है।
अपनों पर क्या कोई ऐसे भी हँसता है।
पागल हो जाऊँगा—
हँसो नहीं।

टूटा शीशा

हृदय में तुमको लिये चुप ही रहा, मैंने—
न कुछ सोचा न कुछ मुख से कहा मैंने,
स्नेहवश सब कुछ सहा मैंने,

किन्तु था वह सभी अत्याचार,
तुम समझ बैठे उसे अधिकार—
मेरे मौन रहने से ।

था हमारा शुभ्र शीशे की तरह जो पारदर्शी प्यार,
पड़ गयी—पड़ती गयी उसमें अपार दरार ।
जो समर्पण था सहज—वह बन गया संभार ।

अपशकुन है मीत ! शीशे का दरक जाना ।
कभी मानोगे—अगर अब तक नहीं माना ।
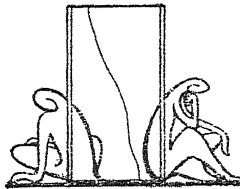
नखत की परछाँई

अँकुरती सी क्यारियों में धान की,
राशि, वर्षा के बिखरते दान की,
हुई संचित
उसी संचित राशि में सीमंत सी
झि ल मि ला ई
क्षीण परछाँई
फटे टूटे बादलों के बीच से
झाँकते नन्हें नखत की,

नखत की वह क्षीण परछाँई
छू गई हर एक रग जी की।
युग युगों से हृदय की सुकुमार पर्तों में बसी थी जो
वह रजत सी रात पूनों की
लग उठी फीकी।
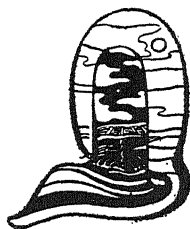
वर्षा और भाषा

वर्षा की बूँदों से शब्द शब्द घुलता है।
बूँदों की वर्षा से नया अर्थ खुलता है।
भावों के बादल घिर आते हैं
घिर घिर कर छाते हैं।
बूँदों की भाषा में सब कुछ कह जाते हैं
रिमझिम रिमझिम अक्षर अक्षर, रस घुलता है।
भादों की कारी अँधियारी में
रह रह कर
बिजली सी उक्ति चमक जाती है।
वाणी की सोने सी देह दमक जाती है।
वर्षा की बूँदों में
बूँदों की वर्षा में
शब्द अर्थ मिलते हैं,
जीवन सब तुलता है।

पुतली

नाश औ निर्माण के दोनों ध्रुवों के बीच,
सारी ज़िन्दगी तिरती
जागरण में, स्वप्न में, सुख दुख सँजोये—
ठीक पुतली की तरह फिरती

चिर-शयन बन,
शीश पर जब मृत्यु आ घिरती,
फिर नहीं फिरती, नहीं तिरती।

अतृप्ति

तन ने सम्पर्कों की सारी सीमाओं को पार किया,
पर न हुआ तृप्त हिया।
फूलों सी बाँहों में,
पलकों की छाँहों में,
सपने की तरह जिया,
पर न हुआ तृप्त हिया।
साँपों सी लहराती,
मन की काली छायाएँ देखीं।
तप्त वासनाओं की,
भूखी नंगी कायाएँ देखीं।
अधरों में, आँखों में
आकर्षण आकर्षण,
आसिंचन मधुवर्षण,
सब कुछ रसहीन लगा,
कुछ था प्राणों में जो नहीं जगा,
जितनी ही प्यास बढ़ी, उतना रस और पिया
पर न हुआ तृप्त हिया।

लगता जैसे सब कुछ केवल है तृषा,
तृप्ति जिसमें कण मात्र नहीं।
केवल गति, केवल गति—
रुकना क्षण मात्र नहीं।

पानी गहरा है

पानी गहरा है पर थाह नहीं पाता हूँ।
लहरों में अनचाहे लहर लहर जाता हूँ।

कोलाहल धूल भरा तट कब का छोड़ चुका।
मन की दुर्बलताओं के बन्धन तोड़ चुका।
पर जाने क्या है—
जब गहरे में चलने को होता हूँ
ठहर ठहर जाता हूँ।
पानी गहरा है पर थाह नहीं पाता हूँ।

झिलमिल जल की सतहों बीच सत्य दीख रहा।
उसमें घुल जाने को।
अपने ही पाने को।
साँस साँस तड़प रही-रोम रोम चीख़ रहा।
माना यह तत्वों की, मिट्टी की, जल की है।
मन की तुलना में पर देह बहुत हलकी है।
इसको तट ही प्रिय है, चाह नहीं तल की है।
इसके निर्मम हलकेपन से ही बँधा बँधा,
जल के आवर्तन में छहर छहर जाता हूँ।
पानी गहरा है पर थाह नहीं पाता हूँ।
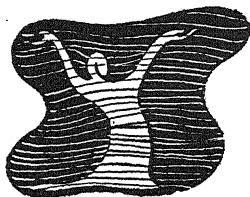
मध्यस्थ

जीभ की मृदु नोक को ऊपर उठा
जब दाढ़ के तीखे कगारे बार बार टटोलता हूँ मैं—
और जब सहसा 'कैनाइन टीथ' छू जाते
सिहर जाती देह
निस्संदेह
लगता मुझे जैसे अभी तक पशु ही बना हूँ मैं।

किन्तु जब पलकें झुका, दृग मूँद
झाँकता हूँ हृदय के उस पार,
मन के गहन लोकों में—
तुम्हारे स्नेह के आलोक से पूरित,

उघर जाते अनेकों द्वार—अनगिन द्वार
जिनकी आड़ से झाइं तुम्हारी झाँकती,
तिरती
बिखरती
फैल जाती ज्योति के उजले कुहासे सी

चेतना की उस मधुर स्वप्निल कुहा में
मुझे लगता देवता हूँ मैं।
तुम बनो मध्यस्थ
बतलाओ कि क्या हूँ मैं।

अभिव्यक्ति का संकट

बहुत ही हलका लगेगा
'मैं तुम्हारा और तुम मेरे',—कहूँ तो,
और यदि यह कहूँ
'मेरे बीच तुम हो, मैं तुम्हारे बीच हूँ'
तो भी नहीं यह कथन इच्छित अर्थ देगा।

'लग रहा ऐसा कि जैसे
है जहाँ तक भी हृदय का, चेतना का, प्राण का विस्तार,
उस सब में तुम्हीं तुम हो—
तुम्ही पर है टिका सब, दूसरा कोई नहीं आधार,
यह दुख-दर्द, हर्ष-विषाद, चिंता, जय-पराजय,
स्नेह, ममता, मोह, करुणा, ग्लानि औ' भय,
तुम्हीं से उत्पन्न होते तुम्हीं में लय'
भावमय यह कथ्य,
इसमें है बहुत कुछ तथ्य—
पर अतिरंजना भी है।

'जिस तरह कुछ भी नहीं है भिन्न मेरा—स्वयम् से,
तुमसे, तथा तुम पर समर्पित अहम् से,
भिन्नता होगी न वैसे ही तुम्हारे पास'
ऐसा ही मुझे विश्वास,
शायद इस तरह से कह सका होऊँ, हृदय की बात
पर क्या सही है यह—कह सका मैं ठीक पूरी बात ?

बिखरा हुआ अहम्

मैं बिखर गया हूँ
अपने ही चारों ओर।
मेरा एक अंश—सामने के नीम की
नंगी टहनियों में लगी उदास पीली
पत्तियों के बीच उलझ गया है—
और उन्हीं के साथ
पतझर के रूखे किन्तु ख़ुमारी भरे
झोंकों की चोट से—एक एक कर,
नाचता-गिरता-लहरता थिरता
जटाओं जैसी भूरी सूखी धूल भरी घास पर,
उतर रहा है—उतर रहा है।

मेरा दूसरा अंश—वर्षा के बाद के बचे उन
खोये-भटके-हलके-दुधियारे बादलों के साथ
आकाश में डोल रहा है,
जिनमें न जल है न जलन, न ओले न गलन,
कभी कभी सियाह चीलें मँडराती हुई
इधर से उधर निकल जाती हैं
किन्तु वे ठहरते नहीं—रुकते नहीं।

मेरा एक तरल अंश—गंगा की लहरों पर दिनरात तिरता है।
डाँडों के साथ साथ उठता है, गिरता है।
उनकी कोरों से टपकती बूँदों सा,
वृत्त बनाता हुआ—फैल जाता है—फैल जाता है।

इन सबसे अलग एक गहरा अंश—मेरा ही
चाँद के सीने के उन दाग़ों में जा छिपा है
जिन्हें चाँदनी रूपजल से धो धो कर हार गयी।
पर जो अमिट थे—अमिट हैं;
मेरे इन सब बिखरे बिखरे अंशों को
कौन सँजोये
मुझे कौन पूरा करे,
पीली पत्तियों को फैलते जलवृत्तों में कौन बाँधे
बह जायेंगी वे।
काले दाग़ों पर बहके सफ़ेद बादलों को कौन साधे,
ढक जायेगा चाँद, खो जायेगी चीलें।

अँधेरा और पथरीला दर्द

रुको मैं तुम्हें वह सब दिखाऊँगा जो मैंने देखा है
स्वयं अँधेरा हूँ तो भी ज्योतिदान दे सकता हूँ
ऊपर निहारो,
अनन्त आलोक में तैरते हुए स्वप्न के टूक जैसा स्वर्गलोक है
जिसमें देवताओं के मुकुट
और
अप्सराओं के केयूर झलकते हैं
आँखें झुकाओ ,
दूध जैसी चाँदनी में डूबा डूबा
उनींदी अलसाहट सा अंतरिक्ष है
जिसमें सैकड़ों सूरज और चाँद झिलमिलाते हैं
निगाहें नीची करो,
धुएँ की स्याह चादर से ढकी विजड़ित सी धरती है
जिस पर मटमैली छायाएँ घूम रही हैं,
अपना अपना दर्द लिए मौत की परछाँईं सी
अब नज़र फिर ऊपर करो—धीरे—धीरे—
धरती से अन्तरिक्ष और अन्तरिक्ष से स्वर्ग की ओर
पर यह क्या तुम तो स्वयं विजड़ित हो गये
उठाओ दृष्टि,
दृष्टि ऊपर उठाओ,
नहीं उठाते,
नहीं उठा सकते,
अफ़सोस कि तुम्हारी भी आँखें पथरा गयीं
धरती के पथरीले दर्द को छूकर
मैं तो कब का अंधा हो चुका हूँ
लोग मुझे अँधेरा कहते हैं ।

ज्योति के कण

दीप पूरी तरह जलन भा नहा पाया
कि जो भी चीज़ थी डूबी हुई
गहरे अँधेरे में
उभर आयी
तमस के निविड़ बंधन से अचानक
खुल गये आकार
निज अस्तित्व को देते हुए नव अर्थ
  ये हैं कुर्सियाँ, यह मेज़, पेपरवेट, यह दीवार,
  छायाएँ गले मिलने लगीं
  पाकर नया विस्तार,
  जैसे किसी शिल्पी ने दिया हो रूप रूप सँवार,
  लगता मुझे तिमिराच्छन्न मन में छिपी
  हर अनुभूति को नव रूप, नूतन अर्थ,
  देने के लिए भी चाहिए
  कुछ ज्योति के कण;
  स्नेह के, संघर्ष के क्षण;
  दे सको तो दो।

अक्षर और आकृति

क्या बताऊँ,
था न जाने किस जगह मन
जो परत खोला किया हरबार कागज़ मोड़कर।
फिर लहर सी आयी अचानक
लिख दिये कुछ नाम बेसोचे विचारे
हाशिये के बीच में, कुछ हाशिये को छोड़कर।
क्षण भर रुका पेन—
और फिर कुछ अधबने अक्षर सँवारे;
पाइयों के शीश को ऊपर उठाया,
मात्राओं के अनूपुर चरण अनुरंजित किये,
नूपुर पिन्हाये,
सभी सीमाएँ मिलायीं,
नयी रेखाएँ बनायीं
यहाँ तक
वे नाम सारे खोगये
उन लकीरों के जाल में निःशब्द
अक्षर सो गये
सहसा उभर आई उन्ही को जोड़कर,
आकृति नयी
हर एक रेखा उसी में घुलमिल गयी।
कुछ नाम अलकों में समाये
और कुछ अक्षर दृगों में बस गये;
कुछ चिह्न उलझी बरुनियों में कस गये;

कुछ छिप गये अंकित अधर की ओट में—
चुपचाप;
प्राणों के अनेकों द्वार
करती पार
आयी उभर अपने आप
खोई हुई सी पहचान।

कहासुना

जो कुछ भी मैंने कहा वही क्या था मन में ?
जो कुछ था मन में ठीक वही क्या कह पाया ?
मैंने भरसक कोशिश की लेकिन सही सही—
शब्दों में भावों का प्रवाह कब बह पाया ?

माना मेरी बातों से चोट लगी तुमको,
पर क्या यह मैंने चाहा था, इंसाफ़ करो।
फिर भी मेरे ही कारण तुमको दर्द हुआ,
जो कुछ भी मैंने कहा सुना, सब माफ़ करो।

पहेली

तुम्हें जाने,
अगर इस बार बतला दो
हमारी मुट्ठियों में है छिपी क्या चीज़।

ऊँ हुँ ! क्यों बतायें हम,
छिपाने में पुरुष होते नहीं हैं कम
किसी से भी।

न बतलाओ नहीं मालूम है तो,
यों किसी को दोष देने से
मिलेगा क्या।

मिलेगा क्या ?
यही तो पूछना था
हाँ ! सुनो यदि हम बता दें
तो मिलेगा क्या।

किसी के प्रश्न करने पर
नया सा प्रश्न कर देना—
नहीं
अच्छी नहीं यह बात
पहले दो हमारे प्रश्न का उत्तर
हमारी मुट्ठियों में है छिपी क्या चीज़
बतलाओ।

बताऊँ ?

हाँ।

मुझे झुठला रहे यूँ ही
न होगा कुछ
दिखादो खोलकर मुट्ठी
नहीं तो खुद बता दो ना—

बताऊँ ? सुन सकोगे ?

है छिपी इन मुट्ठियों के बीच में
मजबूरियाँ—लाचारियाँ—असमर्थताएँ
एक हो जिसको बताएँ
मुट्ठियाँ यह हैं बनी फ़ौलाद की
सब को समेटे
युग युगों से बंद हैं अब तक
नहीं तो चटचटाकर टूट जाती उँगलियाँ—
सब दर्द छितराता
तुम्हें मालूम हो जाता
कि मैं सच कह रहा हूँ
कुछ हँसी की बात है इसमें नहीं—
जो है हक़ीक़त है, हँसो मत तुम

अगर अब भी न हो विश्वास
खिंच आओ ज़रा इन मुट्ठियों के पास
सुन लो दर्द की आवाज़
शायद है इन्हीं में ज़िन्दगी का राज़
रखना सिर्फ़ अपने तक इसे तुम

किसी दिन काश खुल जातीं
कहीं यह मुट्ठियाँ मेरी,
लगा मजबूरियों को आग
ले आता तुम्हें मैं खींच अपनी ज़िन्दगी के पास
श्वासों में उलझते श्वास,
तुम हो सके तो खोल दो यह मुट्ठियाँ मेरी
बढ़ाओ हाथ—उट्ठो—मत करो देरी
मगर यह क्या—तुम्हारे भर गये लोचन
कमल कोमल उँगलियाँ मुड़ चलीं बेबस
अँगूठे भिच गये सहसा
तुम्हारी मुट्ठियाँ भी बाँध दीं आख़िर
इन्हीं मजबूरियों ने—बस
मुझे अब कुछ नहीं कहना
कहूँ भी क्या
कि जब मजबूरियों के बीच ही रहना।
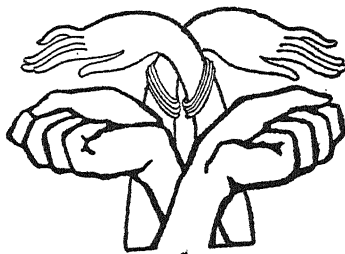
क्या कहोगे ?

क्या कहोगे ?
भर रहा है नीर टूटी नाव में—
यह जान कर भी
उसी पर आँख गड़ाये
संधि से आता हुआ जल देखता सा
डूबने की कल्पना से मुक्त
अपने आप में डूबा
अडिग—निश्चेष्ट जो बैठा हुआ हो छोड़ कर पतवार
खेवनहार
उसको क्या कहोगे ?

नाव को मँझधार तक वह साथ लाया—
किन्तु यदि उस पार जाने के प्रथम ही
नाव का कोमल कलेवर
नीर के आवेग के आगे हुआ लाचार
तो क्यों मानले वह इसे अपनी हार
और ऐसे में अगर कुछ सोच कर वह
छोड़ बैठा हो स्वयं पतवार
उसको क्या कहोगे ?

क्या कहोगे यदि कहे वह
देह मेरी नाव
मेरे बाहु ही हैं डाँड
मेरा शीश ही पतवार
अपनी शक्ति से ही चीरकर मँझधार को
होना मुझे है पार

शीघ्रता क्या ?
तैर लूँगा
किन्तु इतनी दूर तक इस नाव को मैं साथ लाया
डूब जाने दूँ इसे पूरी तरह
लूँ देख इसके हृदय पर यह नीर कैसे
कर रहा अधिकार
कैसे घेर कर मँझधार का आवेग
इसको कर रहा लाचार
देखने को फिर नहीं यह सब मिलेगा
देख तो लूँ
फिर भुजाओं के सहारे तैर लूँगा
डूब भी जाना पड़े यह देखने के बाद
तो होगा नहीं अफ़सोस,
डूबा जिस तरह साथी,
नहीं उस भाँति मैं डूबा
चलाये हाथ, लहरों से लड़ा
मानी नहीं मैंने पराजय अंत तक
विश्वास अपने पर किया
तो क्या हुआ डूबा अगर
क्या पार जाने से इसे कम कहेगा कोई ?
सच बताओ,
डूबती सी नाव के निश्चेष्ट खेवनहार की
इस तरह की बात सुनकर क्या कहोगे ?

अधखुले द्वार

अनजाने मैंने ही खोली होगी साँकल
खुल गये हवा के झोंके से होंगे किवाड़
लघु एक चमकता तारा झलका और दिखा—
आकाश-खंड अधखुले द्वार की लिये आड़।

वह नभ का टुकड़ा खुली हवा में डूबा सा
तम भरा मगर तारों की किरनों से उजला।
आँखों आँखों से होकर तैर गया सीधे—
मन तक जिसमें था रुँधा हुआ जीवन पिछला।

जाने कितना हो गया समय दरवाज़ों को
मैंने अपने ही आप बन्द कर रक्खा था।
कमरे के भीतर की दुनिया तक सीमित हो
मैं ही अपने से कहा किया अपनी गाथा।

उस गाथा को अपने ही रचे अँधेरे में
देता रहता था झूम झूम नित नये छन्द।
थीं आसमान को भूल चुकी आँखें बिल्कुल
अच्छे लगने लग गये उन्हे थे द्वार बन्द।

पर आज अचानक आसमान के टुकड़े ने
कमरे के भीतर राह बना ही ली आखिर।
मेरे मन ने मुझको इतना मजबूर किया
उठ कर मैंने सब खोल दिये दरवाज़े फिर।

लेकिन सब दरवाज़ों के खुल जाने पर भी
जाने क्यों यह आकाश साफ़ दीखता नहीं।
नजरों के आगे आकर छायी जाती है
मन के भीतर की रुँधी ज़िन्दगी कहीं कहीं।

बाहर के परदे दूर हुए फिर भी मन के
भीतर के परदे सब ज्यों के त्यों क़ायम हैं।
तारों की इतनी घनी रोशनी व्यर्थ बना
ये बढ़ा रहे अपने तम से नभ का तम हैं।

बाहर का चंदा आसमान पर चढ़ आया
लेकिन भीतर चाँदनी अभी तक खिली नहीं।
सारे दरवाज़े खोल दिये मैंने फिर भी
सच मानो मेरे मन को राहत मिली नहीं।
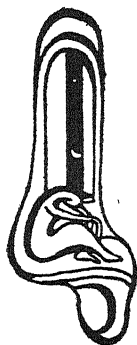
चेतना की पर्त

जी रहे हम चेतना की एक पतली पर्त में
जी रहे हम ज़िन्दगी की एक भोली शर्त में
चेतना की पर्त यह पतली, बहुत पतली
कि जैसे एक कागज़
एक सीमा
भूत और भविष्य दोनों को विभाजित कर रही सी
जो चुका है बीत बीतेगा अभी जो
बीच में इसके बहुत पतली जगह है
ठीक ज्यामिति की बताई
एक रेखा
एक सेक्शन
डोलता है उसी में मन ।

चेतना की पर्त के पीछे छिपी है मौत
या कोई आलौकिक जोत
कौन जाने—
किन्तु यह कटु सत्य है कोई इसे माने न माने
चेतना की पर्त है पतली बहुत
विस्तृत भले ही हो युगों तक
शुभ्र शैशव की मधुर किलकारियाँ
टूटे खिलौने
अधखिले कौमार्य के सपने सलोने
मुग्ध तरुणाई, दिवस रस स्निग्ध
रातें अलस मृदु स्मृतियों भरी दुख-दग्ध
विरह-मिलन, उसास-आँसू, हास-चुम्बन

अनगिनत छन
ओस-भीगी रंग-भीनी सुबह की मनुहार
दोपहर की दौड़धूप अपार
फूली हुई माथे की नसें
सामने की भाप उठती प्यालियों की चाय सी
शाम की गरमागरम बहसें
और पहरों गूँजने वाली हँसी
सब कहाँ है ?
चेतना की इसी पतली पर्त में—
जी रहे हम जिन्दगी की खूबसूरत शर्त में।

तितली के पंख

इन्द्रधनुष के टुकड़ों जैसे
तितली के रँगभरे चटुल पंखों की सुन्दरता से बिँधकर
ओ बेसुध हो जाने वालो !
तितली केवल पंख नहीं है !
तितली में है जान एक नन्हीं प्यारी सी
जो उड़ते उड़ते थक जाती
एक फूल पर रुकते रुकते तैर और फूलों तक जाती
जो पराग से प्रान पोसती
जो मरंद से हृदय जुड़ाती ।
फिर भी जिसकी भूख न मिटती
फिर भी जिसकी प्यास न जाती ।
उसके दो रँगभीने पर हैं ।
माना वे बेहद सुन्दर हैं ।
फिर भी तितली पंख नहीं है ।
तितली केवल पंख नहीं है ।

पल भर सोचो
अगर किसी अनजान चोट से
यह तितली घायल हो जाये
और टूट कर दोनों नाज़ुक पर गिर जायें ।
तो क्या होगा ?
रंग रूप की रेखाओं से रचे रँगीले
लाल सुनहले नीले पीले
इन्द्रधनुष के टुकड़ों जैसे
पंख बिचारे

फिर आपस में जुड़ न सकेंगे
प्रात पवन की सुरभि लुटाती हिलकोरों पर
थिरक थिरक कर उड़ न सकेंगे !
और लगेगा
यह तितली भी कीड़ा है बस
वैसा ही जैसे धरती पर बहुत रेंगते
सने धूल से
जो आये दिन घायल होते
कभी किसी की ठोकर खाकर
कभी किसी की क्रूर भूल से

यह तितली के पंख रँगीले
सिर्फ़ सत्य का एक रूप हैं
वह भी ऐसा जो छूने से ही मिट जाय
उँगली के पोरों से पूछो
कभी जिन्होंने कहीं छुए हों तितली के पर
छूते छूते हाथों में रंगीन चित्र सब सन जायेंगे
बिखर न जाने कहाँ सुनहले नीले पीले कन जायेंगे
बस ढाँचा ही शेष रहेगा
बने रहेंगे रंग न वैसे
और न वैसा वेश रहेगा
इसीलिये तो मैं कहता हूँ
थिरक थिरक कर उड़ने वाली
प्रात पवन की सुरभि लुटाती साँसों के संग मुड़ने वाली
चटुल रँगीली
नीली पीली
तितली केवल पंख नहीं है।
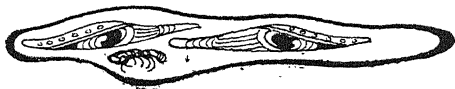
प्यार का सपना

बड़े अँधेरे गंगा के उस पार घूम कर आया
खोया खोया चूर चूर सा माथे पर दुख छाया
गेहूँ के उस हरे खेत से कच्ची बाली एक
बड़े प्यार से तोड़ी
मोड़ी—
चुम्बन लिए अनेक
हरे दूधिया दाने कुछ दाँतों के बीच दबाकर
कुतर लिये—
कुछ मसल उँगलियों से डाले अलसाकर
घर आते ही तकिये पर सर रख कर लगा भुलाने—
वह जो कुछ मन पर घिर आया था जाने अनजाने
थकी देह थी—पलक मुँद गये अलसाहट बढ़ आयी
लगी रिझाने किसी सलोने सपने की परछाँई
जलते माथे को नन्हीं सी ठंडी लहर हवा की
सहसा आयी और छू गयी ज्यों छाया ममता की
लगा मुझे ढक लिया किसी ने जैसे निज आँचल से
फिर वह नन्हीं लहर खो गयी घने स्नेह के छल से
जाने क्यों रह रह कर अंतर लगा भीगने मेरा
वह नन्हीं सी लहर हवा की पुनः कर गयी फेरा
फिर आयी फिर गयी लहर शीतल ज्यों हिम की रेखा
रहा उमड़ता प्यार न मैंने पलक खोलकर देखा
इतने में कुछ चुभा देह में बहुत नुकीला तीखा
सुनी फड़फड़ाहट कानों ने, पंजों सा कुछ दीखा
मैं था अधउघरी पलकें थीं मलगीजी सी शैया
फुदक रही थी रह रह उस पर नन्हीं सी गौरैया

लगा रह गया होगा मेरे मुँह में कोइ दाना
इसीलिए माथे तक उसका था वह आना जाना
स्नेह प्यार आँचल की छाया वह सब का सब भ्रम था
केवल गौरैया के दाने के पाने का क्रम था
नन्हीं ठंडी लहर नहीं थी डैनों का फुरफुर था
दाना था या नई पौध के उगने का अंकुर था
ममता थी या पंछी दाना खोज रहा था अपना
पलक मुँदे थे किन्तु चुका था टूट प्यार का सपना

एक डाल थी

एक डाल थी—
जिसमें कोई पात नहीं था
फूल नहीं था;
लम्बी सी बेडौल टहनियाँ
टेढ़ी-मेढ़ी—
उनमें भी बेहद रूखापन
और हृदय के पार बेधने वाला कोई शूल नहीं था।
सूनापन बन कर मन के प्रतिकूल चुभ गया,
तो भी मुझ से डाल न छूटी।

कुछ दिन बीते
वही डाल थी—
निरे फूल थे
निरे शूल थे
हर टहनी में नयी चमक थी—
नयी नयी कलियाँ
हरियाली बिखराते अनगिनत पात थे।
जाने क्यों मुझसे छुप छुपकर
आपस में कर रहे बात थे।
मैंने चाहा सब अनचाहे शूल तोड़ दूँ
पर हाथों में टहनी का हर शूल चुभ गया
तो भी मुझसे डाल न छूटी।

कुछ दिन बीते और
डाल भी वही बनी थी—
लेकिन कोई शूल नहीं था
पात नहीं था

टहनी टहनी पर अनगिन फूल ही फूल थे
खिले अधखिले कोमल कोमल
मैंने चाहा सब मनचाहे फूल तोड़ लूँ
पर जाने क्यों—
काँटों से भी तीखा बन कर डाली का हर फूल चुभ गया
और एक ही क्षण में मुझसे डाल छूट गयी।

सिंदूरी सबेरा

पौ फटी,
चुपचाप काले स्याह भँवराले अँधेरे की घनी चादर हटी।
मख़मूर आँखों में गयी भर जोत
जब फूटा सुनहला सोत
सिंदूरी सबेरा बादलों की सैकड़ों स्लेटी तहों को
चीरकर इस भाँति उग आया
कि जैसे स्नेह से भर जाय मन की हर सतह
हर वासना जैसे सुहागन बन उठे
पुर जाय हर सीमंत कुंकुम की सुलगती उर्मियों से बेतरह।
चुपचाप काले स्याह भँवराले अँधेरे की घनी चादर हटी,
पौ फटी।

पुरवा के झोंके

तेज़ हैं झोंके
हवाओं के
कुछ हुआ ऐसा-
कि सहसा
बज उठे सब तार दर्दीली शिराओं के।
मस्त अल्हड़ बावले झोंके
झूमती पुरवा हवाओं के।
बह रही झंझा, झकोरे निर्झरों में झर रहे
उमड़ी प्रभंजन की सहसधारा
हर थपेड़ा तोड़ता सा जा रहा तन और मन सारा
वर्ष मास दिवस विवश हैं,
किसी अनजानी दिशा में समय का हर टूक उड़ता जा रहा;
अखबार के बेकार टुकड़ों की तरह ही उड़ रहे विश्वास
हलका पड़ रहा अस्तित्व
तिनकों की तरह लाचार भटके जा रहे निश्वास
जीवन मूक उड़ता जा रहा
जाने कहाँ किस ओर
हृदय का हर एक कोना सनसनाहट से रहा भर
और मन की खिड़कियों का हर किवाड़ा-
फड़फड़ाता पंख जैसा
किसी हलके क्षीण बादल सा
कल्पना के शीश पर आँचल नहीं टिकता
मुँद रहे से पलक आँखों में भरी उन्माद की सिकता
दूब सी झुक कर निगाहें हो रहीं दुहरी;
खड़खड़ाती पत्तियों सी वासनाओं के
कँटीले अंग निखरे हैं,

हर इरादा डगमगाया
हर सपन के बाल बिखरे हैं।
कहीं कोई भी नहीं क्या
जो तनिक इन पागलों के शोर को रोके !
तेज़ हैं झोंके हवाओं के।
बावली पुरवा हवाओं के।

लो फिर सुनो

लो फिर सुनो, मुझ को नहीं यह पथ-प्रदर्शन चाहिए
भटके हुए इन्सान की पग-धूलि मेरे शीश पर।

हर पथिक का कन्धा पकड़
झकझोर कर
पूछे बिना ही कह रहे तुम ज़ोर से
इतिहास की देकर दुहाई
एक ही पथ है
यही पथ है
इसी से लक्ष्य तक जाना तुम्हें होगा।
नहीं तो गालियाँ या गोलियाँ खाना तुम्हें होगा।
मगर सुन लो समझ लो
सब पथिक यकसाँ नहीं होते।
सभी तो आदमी की शक्ल में हैवाँ नहीं होते,
कि जिनको हर क़दम पर हाँकनेवाला जरूरत हो।
नहीं, मुझ को नहीं यह पथ-प्रदर्शन चाहिए
भटके हुए इंसान की पग-धूलि मेरे शीश पर।

अजानी मंज़िलों का राहगीरों को नहीं तुम भेद देते हो।
जकड़ कर कल्पना, उनके परों की मुक्ति को ही छीन लेते हो।
नहीं मालूम तुमको
है कठिन कितना
बताये पन्थ को तजकर
हृदय के बीच से उठते हुए स्वर के सहारे
मुक्त चल पड़ना
नये आलोक-पथ की खोज में
गिरि-गह्वरों से,

कंकड़ों से, पत्थरों से,
झाड़ियों से, झंझटों से, रात-दिन लड़ना।

भटकने के लिए भी एक साहस चाहिए
जो भी नये पथ आज तक खोजे गये
भटके हुए इन्सान की ही देन हैं
मैं इसलिए ही पूजता हूँ वे चरण
जो भटकते हैं रात दिन
निज भाल पर रूमाल सा बाँधे मरण
लो फिर सुनो मुझको नहीं यह पथ-प्रदर्शन चाहिए
भटके हुए इन्सान की पगधूलि मेरे शीश पर।

न यदि लोहू बहे, धरती न हो यदि लाल
तो क्या पथ नहीं होगा?
नया आलोक लाने के लिए
क्या अग्रसर जनरथ नहीं होगा?

गंगा के तट का एक खेत

गंगा के तट का एक खेत,
बहिया आयी, बह गया अधपकी झुकती बालों के समेत।
जाने कितने, किस ठौर, किधर, किस साइत में बरसे बादल,
लहरें रह-रह बढ़ चलीं, भर गया डगर-डगर में जल ही जल।
हँसिया-खुरपी का श्रम डूबा,
उगने-पकने का क्रम डूबा,
डूबी रखवारे की कुटिया
जिसमें संझा को दिया जला जाती थी केवट की बिटिया।
बरतन-भाँड़े, कपड़े-लत्ते,
सब भीज गये, बह गये रोज़ के ईंधन के सूखे पत्ते।
हर बहा, बहे हरहा गोरू,
रो रही दुलरुआ की जोरू,
जिसका सहेट मिट गया —
और जो थी गिरधरवा की चहेत:
गंगा के तट का एक खेत,
बहिया आयी, बह गया अधपकी झुकती बालों के समेत।

कुछ घटी बाढ़, पौधों के भीजे सिर दीखे,
धरती निकली, ले रहे धूप आकर कछुए समझे-सीखे,
बह चली अरे फिर पुरवैया,
फिर छम-छम करती बढ़ीं लहरियाँ, खुले पाल, डोली नैया;
मटमैले जल में परछाईं
धुँधली-धुँधली बनती-मिटती, लहराती साँपों की नाईं।
फिर घटा नीर, फिर तट उभरे,
कंकड़ उभरे, पत्थर उभरे, टूटे-फूटे कुछ घट उभरे,
चिकनी मिट्टी में सने पाँव-
उनके, जो जाते पार गाँव,

पैरों के रह जाते निशान धँस कर धरती में ठाँव ठाँव।
हो गयी धूप कुछ कड़ी और,
जल की बिछुड़न से हिया दरकने लगा पंक का ठौर-ठौर।
चाँदनी रात में कर जाता जादू, सपनों में घुला रेत।
गंगा के तट का एक खेत,
बहिया आई, बह गया अधपकी झुकती बालों के समेत।

भेद

भेद है जो हंस में, बक में,
सटे उलटे लटकते चिमगादड़ों में—
और चातक में,
स्नेह की मृदु धड़कनों में—
और उर की रुग्ण धक-धक में,
काँच के बेडौल टुकड़ों और हीरों में,
वही अन्तर है
किसी कवि की कसी रस में बसी
नव अर्थपूरित पंक्तियों में—
और, अकवि की अनगढ़ी
रसहीन बेमानी लकीरों में ।

एक प्रश्न

यह हँसी-आँसू, उदासी-मुस्कराहट,
क्या सभी अवसान के आते पदों की क्षीण आहट ?
सामने है मौत की काली, खड़ी दीवार,
क्या इसी भय से उपजता हर हृदय में प्यार ?
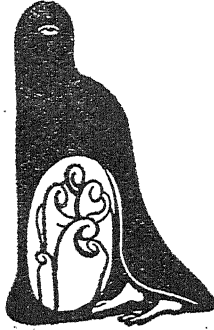
पारिजात

पारिजात,
हरित नील आँखों सा पात-पात।
दूबों सी झुकी-झुकी पलकों पर,
किरनों की खुली-खुली अलकों पर,
धवल-अरुण चुम्बन से फूलों की बरसात।
हरित-नील आँखों सा पात- पात,
पारिजात।

बंदन की रेखा पर चंदन की पंखुरी,
चुपके से आँचल में ढलने की आतुरी,
प्राणों पर बरस रहे चुम्बन से फूल,
डालों की बाँहों के आसपास,
अटक रहे गंध के दुकूल,
स्वर्गिक तरु : सपनों की खिली पाँत।
हरित-नील आँखों सा पात-पात,
पारिजात।

चाँदनी और बादल

चाँद का प्याला कहीं उलटा पड़ा होगा,
बादलों ने चाँदनी पी ली।
स्याह होंठों की गठी कोरें,
छलकते आलोक से तर हैं;
प्रेत सी कारी डरारी देह,
है अभी तक अमृत से गीली।

सुधा थी या सुरा ?
नस-नस में नशा भरपूर,
प्रेत सी कारी डरारी देह चकनाचूर;
लड़खड़ाते डगमगाते पैर
मुड़ी ऐंठी सूँड़ सी बाँहें पड़ीं ढीली।
चाँद का प्याला कहीं उलटा पड़ा होगा,
बादलों ने चाँदनी पी ली।

नाव के पाँव

नीचे नीर का विस्तार
ऊपर बादलों की छाँव,
चल रही है नाव;
चल रही है नाव,
लहरों में छिपे हैं पाँव,
सचमुच मछलियों से कहीं लहरों में छिपे हैं पाँव।
डाँड उठते और गिरते साथ,
फैल जाते दो सलोने हाथ;
टपकतीं बूँदें, बनातीं वृत्त,
पाँव जल में लीन करते नृत्त;
फूल खिल जाते लहरियों पर,
घूमते घिर आसपास भँवर;
हवा से उभरा हुआ कुछ पाल,
शीश पर आँचल लिया है डाल;
दूर नदिया के किनारे गाँव,
जा रही केवट-वधू सी नाव।
धुल गया होगा महावर,
छिपे लहरों में अभी तक—
मछलियों की तरह चंचल पाँव।

टूटती लहरें

ये ज़िन्दगी के रास्ते

ये ज़िन्दगी के रास्ते
केवल तुम्हारे वास्ते
मैं सोचता था एक दिन।

केवल तुम्हारे स्नेह की अमराइयों में घूमकर
केवल तुम्हारे रूप की परछाइयों में झूमकर
केवल तुम्हारे वक्ष की गहराइयों को चूमकर
सब बीत जायेगी उमर;
मैं सोचता था एक दिन।

केवल तुम्हारे स्निग्ध केशों की निशाओं पर लहर
केवल तुम्हारी दृष्टि से धुलती दिशाओं में ठहर
केवल तुम्हारी गोद में हारा-थका सा शीश धर
कट जायगा सारा सफ़र;
मैं सोचता था एक दिन।

विश्वास था निश्चय तुम्हारी बाहुओं से छूटकर,
यह देह जायेगी मुरझ, यह प्राण जायेंगे बिखर
विश्वास था तुमसे अलग होना ज़हर हो जायगा
खोया तुम्हें तो ज़िन्दगी का सत्य भी खो जायगा
पर आज यह सब झूठ है,
तब झूठ था अब झूठ है,

तुम दूर हो, वह स्नेह की अमराइयाँ भी दूर हैं।
परछाइयाँ भी दूर हैं, गहराइयाँ भी दूर हैं।
साँसें तुम्हारी दूर हैं, बाँहें तुम्हारी दूर हैं।
मंज़िल तुम्हारी दूर है, राहें तुम्हारी दूर हैं।
तुम तो नहीं पर मौत की तस्वीर मेरे साथ है।
हर चाह को बाँधे हुए तक़दीर मेरे साथ है।
फिर भी अभी मैं जी रहा।
ये ही नहीं मैं सोच आगे और जीने की रहा।

अब देखता हूँ ज़िन्दगी यह प्यार से ज़्यादा बड़ी।
दो लोचनों की अश्रुमय मनुहार से ज़्यादा बड़ी।
इसमें हज़ारों मील लाखों मील रेगिस्तान है।
फिर भी किसी उम्मीदपर चलता यहाँ इंसान है।
उम्मीद वह जो साथ रहने तक नहीं सीमित यहाँ।
हर व्यक्ति केवल प्यार पाकर ही नहीं जीवित यहाँ।

हारा-थका सा शीश, पत्थर पर, किसी तरु-छाँह में,
रख कर ज़रा सी देर चलता है मरन की राह में।
यह ज़िन्दगी का सत्य सच मानो कि तुम से भी बड़ा।
इस तक पहुँचने को मनुज होता रहा गिरगिर खड़ा।
इस सत्य के आगे मुरझना और खिलना एक है।
इस सत्य के आगे बिछुड़ना और मिलना एक है।
इस सत्य के आगे सभी धरती हृदय का पात्र है,
मेरा तुम्हारा स्नेह इस पथ की इकाई मात्र है।

माना हमारे स्नेह में कोई कमी होगी नहीं,
माना हमारे दीप की कम रोशनी होगी नहीं,
लेकिन किसी भी रोशनी को बाँध लेना पाप है।
।ने हृदय का स्नेह दुनिया को न देना पाप है।

जो धूलि-कण आये हमारी राह में सोना बने।
अपना पराया अब न हो कोई हमारे सामने।
तुमने दिया सर्वस्व मुझ से भी ज़रा सा दान लो।
इस सत्य को मैं चाहता हूँ आज तुम भी मान लो।
मानो न मानो तुम सही,
पर सोचता हूँ मैं यही,
ये ज़िन्दगी के रास्ते।
सारी धरा के वास्ते।
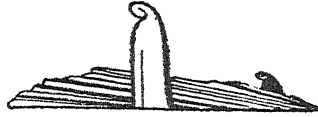
सच हम नहीं सच तुम नहीं

सच हम नहीं सच तुम नहीं।
सच है सतत संघर्ष ही।
संघर्ष से हट कर जिये तो क्या जिये हम या कि तुम।
जो नत हुआ वह मृत हुआ ज्यों वृन्त से झर कर कुसुम।
जो पन्थ भूल रुका नहीं,
जो हार देख झुका नहीं,
जिसने मरण को भी लिया हो जीत, है जीवन वही।
सच हम नहीं सच तुम नहीं।

ऐसा करो जिससे न प्राणों में कहीं जड़ता रहे।
जो है जहाँ चुपचाप अपने आप से लड़ता रहे।
जो भी परिस्थितियाँ मिलें,
काँटे चुभें, कलियाँ खिलें,
टूटे नहीं इन्सान, बस संदेश यौवन का यही।
सच हम नहीं सच तुम नहीं।

हमने रचा आओ हमीं अब तोड़ दें इस प्यार को।
यह क्या मिलन, मिलना वही जो मोड़ दे मँझधार को।
जो साथ फूलों के चले,
जो ढाल पाते ही ढले,
वह ज़िन्दगी क्या ज़िन्दगी जो सिर्फ़ पानी सी बही।
सच हम नहीं सच तुम नहीं।

अपने हृदय का सत्य अपने आप हम को खोजना।
अपने नयन का नीर अपने आप हम को पोंछना।
आकाश सुख देगा नहीं,
धरती पसीजी है कहीं!
हर एक राही को भटक कर ही दिशा मिलती रही।
सच हम नहीं सच तुम नहीं।

बेकार है मुस्कान से ढकना हृदय की खिन्नता।
आदर्श हो सकती नहीं तन और मन की भिन्नता।
जब तक बँधी है चेतना,
जब तक प्रणय दुख से घना,
तब तक न मानूँगा कभी इस राह को ही मैं सही।
सच हम नहीं सच तुम नहीं।

लोग कहते हैं

लोग कहते हैं कि तुमसे दूर है अब जो,
ज़िन्दगी भर वह तुम्हारा रह नहीं सकता।
झूठ है यह बात या कुछ सत्य है इसमें।
तुम्हीं बोलो मैं स्वयं कुछ कह नहीं सकता।

जानता हूँ सिर्फ़ इतना ही कि अनचाहे,
अनकहे अनजान सहसा ऐंठतीं बाँहें।
बैठ जाता मन, घुमड़ आते घने बादल,
डूब जाती साँस कुछ इतना बरसता जल।

मचलते आँसू लिपट कर साथ बहने को।
किस तरह कह दूँ कि मैं अब बह नहीं सकता।
और मैं इसके सिवा कुछ कह नहीं सकता।

भले पूजा-मूर्ति चकनाचूर हो जाये,
भले अपनी छाँह तन से दूर हो जाये।
देह गल जाये, नसों में आग लग जाये,
भले अपने पर स्वयं सन्देह जग जाये।

धड़कनों में, श्वास में, प्रश्वास में, लेकिन—
एक दृढ़ विश्वास है जो ढह नहीं सकता।
और मैं इसके सिवा कुछ कह नहीं सकता।

जिन्दगी है तो कहीं पर प्यार है निश्चय,
वृत्त है तो विन्दु का आधार है निश्चय ।
चोट सहने को खुली इन्सान की छाती,
क्योंकि उसमें है किसी के स्नेह की थाती ।

हर तरह आराम से हूँ पर कहीं रह-रह—
दर्द होता है जिसे मैं सह नहीं सकता ।
और मैं इसके सिवा कुछ कह नहीं सकता ।

इस बार

इस बार दिवाली बीत गयी सूनी सूनी,
इस बार प्रदीपों ने मुझसे कुछ नहीं कहा।
इस बार मुझे अँधियारी लगी नहीं दूनी,
तारे टूटे पर नीर नयन से नहीं बहा।
छू सकी न कोई ज्योति हृदय की धड़कन को,
मिट्टी के हर दीपक में थी पत्थर की लौ।
क्या जाने क्या इस बार हुआ मेरे मन को,
एक भी किरन दे सके नहीं दीपक सौ सौ।

गीत

कभी कभी सुखमय जीवन भी बन जाता है भार।

सहसा मन में जग उठती है दुख सहने की साध।
नहीं चाहता पाना मन ही निज निधि को निर्बाध।
कभी नष्ट होकर आशाएँ देती हैं सन्तोष,
कभी कभी प्यारा लगता है साँस तोड़ता प्यार।
कभी कभी सुखमय जीवन भी बन जाता है भार।

एक विजय के बाद दूसरी, यह क्रम है रस हीन
मुसकानों में घुटकर मर जाते हैं अश्रु नवीन
कभी विजेता बनने में भी होता है संकोच,
कभी कभी अपने को भाती है अपनी ही हार।
कभी कभी सुखमय जीवन भी बन जाता है भार।

किसी समय मन कर उठता है मन से ही विद्रोह।
चूर चूर होकर रह जाता है सब माया-मोह।
कभी किसी की निर्ममता में भी मिलती है तृप्ति,
कभी कभी अच्छा लगने लगता है अत्याचार।
कभी कभी सुखमय जीवन भी बन जाता है भार।

दो मुक्तक

हर स्मिति-सरि के लिए अश्रु-सागर बहता है।
क्षण भर की ही भूल युगों तक उर दहता है।
एक फूल के आस पास शत-शत कंटक हैं।
अंधकार में गुँथे हुए सारे तारक हैं।
एक एक सुख-रश्मि को,
घेरे अमित विषाद हैं।
नियम तिमिर ही है सदा,
रवि शशि सब अपवाद हैं।

आहत, हतचेतन समीर विष पिये हुए है।
तिमिर क्रूर मुँह दिशा-दिशा का सिये हुए है।
दम घुटने से यहाँ पुण्य होता अर्जित है।
लेना सुख की साँस पाप कह कर वर्जित है।
यहाँ रुदन के लिए भी,
केवल मौन उपाधि है।
नीले अंबर से ढकी,
धरती एक समाधि है।

गीत

मैंने पुकारा फिर तुम्हें।

आँसू दृगों से ढुल गये।
बन्धन स्वरों के खुल गये।
इस डूबती सी साँस ने—
समझा सहारा फिर तुम्हें।
मैंने पुकारा फिर तुम्हें।

अलकें शिथिल उलझी हुईं।
पर दृष्टियाँ सुलझी हुईं।
छिप चाँदनी के फूल में—
मैंने निहारा फिर तुम्हें।
मैंने पुकारा फिर तुम्हें।

उमड़ीं, उठीं, झिझकीं, झुकीं।
लहरें झलक पाकर रुकीं।
मँझधार के आवेग ने—
माना किनारा फिर तुम्हें।
मैंने पुकारा फिर तुम्हें।

गीत

मधुरिमे ! फिर आज तुमसे माँगता हूँ शक्ति
कब हुआ निश्शेष अविनश्वर तुम्हारा दान,
किन्तु मानूँगा न मैं उसके लिये एहसान,
आज अपनापन समझ फिर फैलता है हाथ,
सजल पलकें, उँगलियों के छोर पर अभिमान।
याचना मेरी तुम्हारे प्यार की अभिव्यक्ति।
मधुरिमे ! फिर आज तुमसे माँगता हूँ शक्ति।

कब तुम्हारे द्वार से रीता फिरा यह हाथ।
गोद में तुमने सम्हाला कब न झुकता माथ।
कब न पागल चुम्बनों से भर दिये ये प्रान,
कब नहीं ढुलका किये मन आँसुओं के साथ।
कब न दूरी में बिलख दूनी हुई अनुरक्ति।
मधुरिमे ! फिर आज तुमसे माँगता हूँ शक्ति।

तुम किरन बन कर तिरो नभ, चाँदनी से स्नात।
चाँद में पाऊँ तुम्हें मैं मुग्ध सारी रात।
फिर हृदय के स्वर हृदय में डूब कर घुल जाँय,
भीग जायें तरलता से दान की तरु पात।
आसरा बन कर मधुर युग युग जिये आसक्ति।
मधुरिमे ! फिर आज तुमसे माँगता हूँ शक्ति।

अजानी छाँह

साथ में मेरे अजानी छाँह रहती है।
चाहता हूँ जब उसे उन्माद में छूना, अचानक दूर हो जाती।
और यदि उसकी मृदुलता को अछूता छोड़ दूँ तो क्रूर हो जाती।
अगर केवल देखता ही रहूँ तो मन-प्राण में, भरपूर हो जाती।
क्यों उसे मेरी बहुत परवाह रहती है।
साथ में मेरे अजानी छाँह रहती है।

बहक जाऊँ तो बिना बोले अजब आभास देकर टोक देती है।
कुपथ पर पड़ जाय मन तो पागलों सी लिपट पग से रोक देती है।
सब उसे तम समझते हैं किंतु वह मुझको सतत आलोक देती है।
एक मूरत है कि रोके राह रहती है।
साथ में मेरे अजानी छाँह रहती है।

वह नहीं माँसल, महज आकार, लहराती हुई सी एक काया है।
सत्य है मेरे लिए ही, दूसरों के वास्ते तो सिर्फ माया है।
है उसी में बस रहा अस्तित्व मेरा जो असत् है और छाया है।
तन कसे मेरा उसी की बाँह रहती है।
साथ में मेरे अजानी छाँह रहती है।

गोरी रात

व्योम-गंगा में आयी बाढ़,
चाँद से टकरायी हिलकोर।
इधर से सुधा उधर से दूध,
भीगने लगे गगन के छोर।
दिशाओं में ढरका सब दूध,
धरा पर गयी सुधा सब फैल।
हो गयी सहसा गोरी रात,
धुल गया युगों युगों का मैल।

गीत

क्षीर-सागर में नहाकर लौट आयी रात।
दूध से भीगे अभी तक चाँदनी के गात।

देह से चिपका बरफ सा श्वेत शीत दुकूल,
नखत—वेणी में रहे उलझे जुही के फूल,
वह गये कुछ लहरियों के साथ दूर अकूल,

और यह शशि—भेंट कमला ने किया जलजात।
क्षीर-सागर में नहाकर लौट आयी रात।

ओस—गीलापन वसन का बन रहा ज्यों बूँद,
लग न जाय बयार द्वार रहीं दिशाएँ मूँद,
चाहतीं किरनें अभी दें कुन्तलों को गूँद,

काँपता तन—हिल रहा सुकुमार पुरइन पात।
क्षीर-सागर में नहाकर लौट आयी रात!

व्योमगंगा की धुली सारी पहन चुपचाप,
कंचुकी में बद्ध यौवन पुण्य के सँग पाप,
अधर पर स्मित रही प्राणों के पुलिन तक व्याप,

गगन के उर में सिमट करती लगन की बात।
क्षीर-सागर में नहाकर लौट आयी रात।
दूध से भीगे अभी तक चाँदनी के गात।

गीत

यह चाँद ज्योति का कमल-फूल ।
तारक छितरे किंजल्क जाल,
ज्योत्स्ना पराग की धवल-धूल ।
यह चाँद ज्योति का कमल-फूल ।
उर का कलंक काला भँवरा ।
कन-कन में अमृत मरंद भरा ।
रस की बूँदों में सनी पाँख ।
उन्मद मदमाती मुँदी आँख ।
मूर्छित चुम्बन-श्लथ विसुध गात,
बेबस उड़ना तक गया भूल ।
यह चाँद ज्योति का कमल-फूल ।
नभ-सर में उठती विभा लहर ।
जाते मुकुलित दल छहर-छहर ।
बहता सुगंध मधु-मुग्ध पवन ।
खिल उठता निशि का पंकज-वन ।
झर झर झर सब दल झरे, धरा—
पहने पाँखुरियों का दुकूल ।
यह चाँद ज्योति का कमल-फूल ।
बल खा जातीं बाँहें-मृणाल ।
तिर तिर जाते लोचन-मराल ।
बादल पुरइन के हरित पात ।
कँप-कँप उठते हिम विंदु स्नात ।
धड़कन के पावों में कोमल,
चुभ-चुभ जाते घन-किरन-शूल ।
यह चाँद ज्योति का कमल-फूल ।

गीत

यह रुपहली छाँहवाली बेल।
कसमसाते पाश में बाँधे हुए आकाश,
तिमिर-तरु की स्याह शाखों पर खिले,
नखत-कुसुमों से रही है खेल।
यह रुपहली छाँह वाली बेल।

रश्मियों के वे सुकोमल तार,
लहराता गगन से भूमि तक
जिनके रजत आलोक का विस्तार,
उलझे रात के हर पात से सुकुमार।

इस धवल आकाश-लतिका में,
झूलता सोलह पँखुरियों का अमृतमय फूल;
गंध से जिसकी दिशाएँ अंध,
खोजती फिरतीं अजाने मूल से सम्बंध।
वल्लरी निर्मूल—
फिर भी विकसता है फूल

है रहस्य भरा हृदय से हर हृदय का मेल।
हर जगह छायी हुई है,
यह रुपहली छाँहवाली बेल।

गीत

सुकुमार चाँदनी रही झूल,
उन्मत्त चाँद की बाँहों में।
उर पर लहरे काले कुंतल।
ज्यों उमड़ चलीं यमुना की लहरें,
डूब गये दो ताजमहल।

पुलकित सपनों की चहल-पहल।

किरनें भोलापन गयीं भूल,
तम सघन कुंज की छाँहों में।
नत पलकों में अधमुँदे भँवर।
ज्यों खोल रहे धीरे धीरे
घन बरुनिजाल में उलझे पर।

साँसें सुनतीं साँसों के स्वर।

खिंच गया लाज का श्लथ दुकूल,
अनगिन अनबोली चाहों में।

गीत

इस समीरन में मिली होगी तुम्हारी साँस भी

उर्मियों का प्यार पाकर झूमने वाले झकोरे
छू रहे होंगे तुम्हारे ज्वारवाही अंग गोरे।
देख शशि को आ रही होगी तुम्हें भी याद मेरी,
चाँदनी फैली हुई होगी तुम्हारे पास भी।
इस समीरन में मिली होगी तुम्हारी साँस भी।

ये रुई के पहल से हलके धवल बादल बिचारे।
जा रहे प्रतिपल तृपाकुल स्वर्ग-सरिता के किनारे।
ये विरल छिटके नखत, ये दूध छलकाती दिशाएँ,
छा रहा होगा तुम्हें यह स्वप्न सा आकाश भी।
इस समीरन में मिली होगी तुम्हारी साँस भी।

एक सूनापन पलक के छोर पर दो बूँद जलकन।
हृदय की कातर पुकारें प्यार की लाचार छलकन।
जिस तरह हर दूब की आँखें भरी सी हैं यहाँ पर,
ठीक वैसे ही सजल होगी वहाँ की घास भी।
इस समीरन में मिली होगी तुम्हारी साँस भी।

गीत

यह चंदन सा चाँद महकता, यह चाँदी सी रात।
क्यों नयनों से रूप कह रहा—सुनो हमारी बात।

झुकते पलक कि दूर क्षितिज तक छा जाता तम-तोम।
खुलते नयन कि फिर आभा से लहरा उठता व्योम।
अधरों पर मुसकान कि पर खोले हंसों की पाँत।

क्यों नयनों से रूप कह रहा-सुनो हमारी बात।

हिलती अलक कि काँप उठती तम के पंथी की राह।
वेणी खुली कि शेफाली की नत डाली की छाँह।
साँसें जातीं भीग कि लाती पुरवाई बरसात।

यह चंदन सा चाँद महकता, यह चाँदी सी रात।

देह लहरती या कि लहर को देता पवन झकोर।
अविरल बोल कि जल में वर्षा की बूँदों का शोर।
शरमीले से गान कि जैसे छुईमुई के पात।

सुनो हमारी बात।
यह चाँदी सी रात।

गीत

वह रात अमर।
आलोक-तरल नभ,
रश्मि-खचित लहराता वासव का
दुकूल।

छितरे तारक,
अधखुली शची की वेणी के
अधखिले फूल।
छवि सघन कुंज,
भोले-भाले तरु खड़े स्वर्ग के प्रहरी से।

ऐरावत के कानों जैसे,
हिलते कदली के पात
अमर।
वह रात अमर।

तम की अलकों को बिखरा कर
बह चली
भुरहरे की बतास;
निशि के अधरों पर
उतर रहा
अधजगे प्रात का सहज हास।

मुँद जाते दोनों दृग
अनन्त सपनों का सौरभ भार लिये।
आभा की किरनों से
छूकर,
खिलते सुधि के जलजात
अमर।
वह रात अमर।
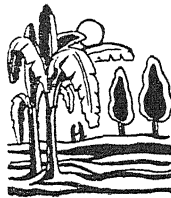
चाँदनी और चाँद

रच दिया पथ ज्योति के आवर्तनों से चाँद ने।
रात को बेणी किरन की उँगलियों से खोलकर
बाँध अपने को लिया अनगिन घनों से चाँद ने।

'याद है वह नीबुओं की साँवली छाया बनी?'
ओस की सुकुमार बूँदों से भरी पलकें उठा,
आसमानी चाँद से कहती कपूरी चाँदनी।

आओ!

याद पिछली चाँदनी रातें करें आओ !
अनकहे स्वीकार सौगातें करें, आओ !
भोर होते ज़िन्दगी से जूझना होगा,
रात है, कुछ प्यार की बातें करें, आओ !

जुन्हाई

तरुनाई सी खिली जुन्हाई,
घुले पुलक से प्रान।
किसने चूमा चाँद कि मुख से,
मिटते नहीं निशान।
किरन किरन से रूप बरसता,
नखत नखत से प्यार।
डूबा जाता गगन ज्योति की,
लहरों में सुकुमार।
पीपल का हर पात चमकता,
जैसे जल में सीप।
देह देह से दूर प्रान के,
फिर भी प्रान समीप।

दो वर्षा-गीत

बादल घिर आये री बीर !
फिर फिर आये,
घिर घिर छाये,
गरज तरज गंभीर
बादल घिर आये री बीर !
नैना रोये,
आँसू बोये,
तभी गगन से फूट धरा पर,
बरसा इतना नीर ।
डगमग नैया,
फिर पुरवैया—
पाल समझ कर लिये जा रही
खींचे मेरा चीर !

घेर आये घन ।
पारतीं काजल दिशाएँ ।
दिवस पर छायीं निशाएँ ।
कौन लाया खींच,
काले बाँदलों के बीच,
मेरा मन ?
थिरकतीं पागल बिजलियाँ ।
फूटतीं ज्यों स्वर्ण-कलियाँ ।
बिखरते नग-हीर,
झरता नूपुरों से नीर,
सोना बन ।

दामिनी

दामिनी !
किन्तु प्रियके सजल श्यामल
पंथ की अनुगामिनी
लाल मेंहदी में रचे कर,
युगल पग पूरित महावर,
इन्द्रधनुषी मौर भूपित
जलद की सहगामिनी !
दामिनी !
नूपुरों में बूँद के स्वर,
किंकिणी से ध्वनित अंबर,
थिरकती फिरती क्षितिज के
छोर तक अविरामिनी !
दामिनी !
सुरमई बादल-कलश भर
ढालती प्यासी धरणि पर,
गगनचारी, सलिल-बाला,
प्रिय-मिलन-क्षण-कामिनी !
स्वर्ण-रंजित दामिनी !
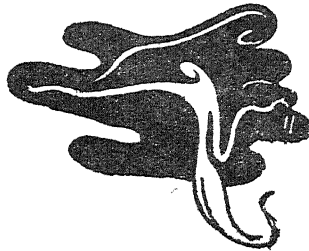
तुम्हारा साथ

कोई अनपहचाने स्वर में,
जाने कितनी बार कह चुका—
छूट रहा है हाथ तुम्हारा,
पर जीवन के नये मोड़ पर
नयी तरह से
मुझे मिल रहा साथ तुम्हारा।

जहाँ कहीं भी बिना सहारे,
जितने भी लड़ लड़ कर हारे,
अपनी ही गति के आरोही,
पथ पर जितने थके बटोही,
जिन्हें न तिल भर छाँह मिली है,
चूम चूम कर पी लेने को जिनके आँसू,
कभी न कोई कली खिली है,
जो अतृप्त हैं, जो अशक्त हैं,
जो अपने मन की छितरायी अभिलाषाओं में विभक्त हैं।
वे भी जिनके पाँव आजतक
रहे पंथ से सदा अपरिचित।
वे भी जिनके हाथ आजतक
हुए कर्म में सदा विकम्पित।
जिनकी पलकों के नीचे ही जाने कितने स्वप्न मर गये।
जिनकी अलकों में झंझा के झोंके कितनी धूल भर गये।

आज मुझे लगता है जैसे
इन सब हारों, लाचारों पर—
अंधकार से लड़ने वाले इन अनगिन नखतों तारों पर—
फैल रहा है हाथ तुम्हारा;

अपना आँसू से भीगा आँचल फैलाता,
छाया करता, थकी देह उनकी सहलाता,
मन की सारी ममता करुणा सहज लुटाता,
कल्पवृक्ष के नवल पात सा
फैल रहा है हाथ तुम्हारा।

अब न कभी छूटेगा मुझसे साथ तुम्हारा

टूटती लहरें

छहर-छहर टूटती, ठहर-ठहर टूटती।
टूट रहे सागर की लहर-लहर टूटती।
अँधियारा उतर रहा सपनों के गाँव में,
रेतीला सूनापन पलकों की छाँव में,
पत्थर ज्यों बँधे हुए नज़रों के पाँव में,
यों मुझको देखो मत,
नीर भरी आँखों में एक लहर टूटती।
दर्द भरे सागर की लहर-लहर टूटती।
लगता है सारा अस्तित्व किसी झूठ पर,
टिका हुआ, जाता है आप ही बिखर-बिखर,
केवल रव अर्थहीन, साँसों का क्षीण स्वर,
यों मुझसे पूछो मत,
पीर भरे प्राणों में एक लहर टूटती।
दर्द भरे सागर की लहर-लहर टूटती।
परिचित संस्पर्शों में तीखा अभिशाप है,
अजगर सा आत्मा को कसे हुए पाप है,
लोहू में जलता विष, नस-नस में ताप है,
यों मुझको बाँधो मत,
टीस भरे अंगों में एक लहर टूटती।
दर्द भरे सागर की लहर-लहर टूटती।
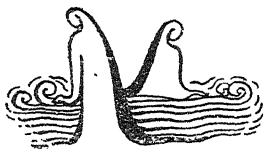
जगदीश गुप्त

जन्म : सं० १९८१: जन्म स्थान शाहाबाद, हरदोई; शिक्षा : प्रयाग विश्वविद्यालय में बी० ए० से डी० फिल् तक और इससे पूर्व कानपूर, मुरादाबाद, सीतापूर, देहरादून तथा शाहाबाद में; नियुक्ति : हिन्दी विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय, में लेक्चरर् के रूप में, सन् १९५० से; शोध कार्य: विषय गुजराती तथा ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन; साहित्यिक कार्य : आधुनिक हिन्दी कविता की नवीनतम प्रवृत्तियों को व्यक्त करने वाली अर्धवार्षिक पत्रिका 'नयी कविता' का सम्पादन तथा अनेक कविताओं और आलोचनात्मक लेखों का सृजन जो लगभग पिछले दस वर्षों से प्रकाशित एवं प्रसारित होते रहे; विशेष : सदस्य 'परिमल', ब्रज-भाषा काव्य तथा चित्रकला के प्रति व्यसन-भाव, स्वभाव में सहज कला-प्रियता, विचारों में रूढ़ियों तथा संकीर्णताओं के प्रति गहन विरोध।